पंच-प्रदीप

भा र ती य ज्ञा न पी ठ का शी

पंच-प्रदीपकी

प्रथम पंक्ति सूची

क्रम सख्या

"ओ मेरे सीमाहीन !

तुम्हें

यह

सीमित-हृदय

समर्पित

है"

आमुख

लेखक, श्री सुमित्रानन्दन पन्त

श्री शाति एम० ए० का नवीन काव्य-सग्रह 'पच-प्रदीप'के नामसे पाठकोके सामने आ रहा है। हिन्दी कविताके प्रेमियोको कवयित्रीका परिचय देनेकी आवश्यकता नही है, शातिजी के और भी कई काव्य-सग्रह इससे पहिले प्रकाशित हो चुके है और वे अपनी मौलिकता एव विशिष्टताके कारण हिन्दी ससारका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लोकप्रिय वन चुके है।

हिन्दी कविताके आकाशमे श्री शाति एम० ए० अपना शुभ्र स्फटि-कोज्ज्वल व्यक्तित्व लेकर उदित हुई है। उनमें स्त्रीसुलभ शील तथा सुरुचिके साथ काव्योचित प्रतिभाका अत्यत मनोरम समन्वय मिलता है। उनके काव्यका प्राणोच्छ्वसित पदार्थ अत्यत मार्मिक भावनाओ तथा सूक्ष्म सवेदनाओ का वना हुआ है, जिसमें धूप-छाँहकी तरह प्रेरणाओका आलोक झलकता रहता है। उसमें 'ससृति लोकका कल्याण अत्यत पास लेकर खडी है। उनके हृदयस्पर्शी गीतो तथा छदोसे जीवनकी गहन व्यापक अनुभूतियाँ झाँकती रहती है और उनका उद्वेलन स्वर्गीय आशा तथा प्राणप्रद उद्‌वोधनका रूप धारण करता रहता है। उनकी वाणीका मचय यदि 'वुरा नही जो हो जाता है' गाकर ढाढस वँधाता है तो 'तुम नही अभी भी निराधार' ,कहकर सान्त्वना तथा वल भी देता है। घनीभूत अधकारके क्षणोमें भी एक प्रकाशकी किरण फूट पडती है, अथवा अधकारकी भीषणता एक तटस्थ चेतनाके तटपर टकराकर निरस्त हो जाती है, उन्हें सदैव 'आगे सवेरा खडा' दिखाई देता है।

शातिजीका कविहृदय सस्कारत एक स्वच्छ सुथरे कक्षके भीतर प्रतिष्ठित है, जहाँसे उनका सहज बोध भावनाके उत्थान-पतनो, सुख-दुखके मधुर-तिक्त सवेदनो तथा बाह्य जगत्के आघातो और विक्षोभोको एक स्वस्थ सयमन तथा आगे बढनेकी प्रेरणा प्रदान करता रहता है। कही भी कवियित्री की समर्थ भावना ऊबड-खाबड धरतीकी ठोकर खाकर परास्त होती नही प्रतीत होती, और न वह भावोच्छ्वास मात्र बनकर वाष्पकी तरह हवामे उडती ही दिखाई देती है। यत्र-तत्र उसमें जगत्के सघर्ष तथा जीवनके कटु अनुभवोका दिग्दर्शन मिलता है, पर या तो वह मानवीय सतुलन ग्रहण कर लेता है अथवा विवेक शक्तिकी उपेक्षासे पराजित हो जाता है। कही वह निराशामे डुबकी भी लगाती है तो नवीन आशाकी रत्नराशिको खोजनेके अभिप्राय से। युगीन चेतनासे प्रभावित होकर उनकी कविता विचारोका भी आदर्श बनना चाहती है किंतु मुख्य झकार उसकी है भावना ही। जैसा कि वह स्वय भी कहती है

भावोका आदेश मानकर लिखती जा तू गीत !
जिसकी उँगलीने है मेरा
किया पथ निर्माण,
वह निर्माण कि चाह रहा जो
अग जगका कल्याण,
वह कल्याण छिपा है जिसमें
मौन विगम बलिदान,
वह बलिदान जिसे समझा है
सबने ही अवसान,
पर जिसपर अवलबित मेरे सपने आशातीत,
भावोका आदेश मानकर लिखती जा तू गीत !

आमुख

अत कवयित्रीके स्वरोका सगीत भावनाके शक्ति-सौन्दर्यसे ओतप्रोत है जिसमें वैयक्तिक सुख-दुखकी अनुभूतियोको ऊर्ध्व तथा व्यापक बनानेका सफल प्रयत्न मिलता है, एव इधर-उधर जीवन तथा विश्व-सघर्षकी छोटी-बडी झाँकिया तथा एक आशामयी रहस्यमयी शक्तिपर अटल विश्वासकी भी झलक मिलती है। नि सदेह उसमे विद्रोहकी हुकार भी सस्कृत रुचि तथा भावनाके सतुलनके कारण सौन्दर्यगरिमा तथा गभीरता बनकर निखर उठती है।

कवयित्रीकी भाषामें स्वाभाविकता, सजीवता, मधुर प्रवाह तथा शक्तिका सतुलित सौष्ठव है। वह अपने काव्य-निर्माणमें बच्चन तथा महादेवीजीकी झकारोको आत्मसात् कर उन्हे नवीन रूप प्रदान कर देती है।

हिन्दी काव्यकी भूमिकापर श्री शातिजीके सौम्य आगमनका मैं प्रसन्न मनसे अभिवादन करता हूँ और आशा करता हूँ कि उनकी प्रतिभाके विकासके साथ ही उनकी रचनाओमें नवीन शोभाके वैभवका समावेश होता रहेगा। हिन्दी कविताको सदैवसे अपनी कवयित्रियोका गौरव प्राप्त हुआ है, मुझे विश्वास है 'पच-प्रदीप'की शिखा भी उत्तरोत्तर उन्नत होकर उस गौरवको वहन करनेमें समर्थ होगी। मेरी शुभ कामनाएँ उसके साथ है।

स्वगत—

यदि जीवन एक प्रवाह है तो कविताकी प्रत्येक कडी उसमें उठनेवाली वह तरग है जो तटोको निनादित करनेके अतिरिक्त उसके गहन धरातलमें रोमाच भरनेकी क्षमता रखती है। चाहे उसमें वेदना हो, उल्लास, ममता अथवा निर्वेद, प्रत्येककी अनुभूति कविके जीवनकी अस्त-व्यस्तताके साथ इस प्रकार अभिन्नरूपसे सवधित रहती है कि उनका काव्यके रूपमें सत्य, शिव और सुन्दरके रगोसे चित्रण मानो कविके अतरकी प्रतिमा है। इसलिये कविकी कविताको समझना उसके जीवनकी वहुमुखी आलोचना है।

वुद्धिके क्षेत्रमें जो स्थान सयमका है, हृदयके क्षेत्रमें वही स्थान कविताका है। सयम वुद्धिको परिपक्व करता है, कविता हृदयको शुद्ध कर देनी है, उसके विकार धो देती है। इस दृष्टिसे कविताका चिंतन, लोक-रंजनका समन्वय लोक-हितसे सुन्दरतापूर्वक कर सकेगा।

श्रद्धेय पतजीने आमुख लिखकर प्रेरणाको प्राण दिये। उनके प्रति मेरी कृतज्ञताके भावोको उपयुक्त भाषा ही नही मिल पाई।

वस इतना ही—

—शान्ति

१७ वी, मोतीलाल नेहरू रोड,
प्रयाग

१

जल उठे मेरे पच-प्रदीप !

चला रवि लेने को विश्राम,
दिवस वनने रजनी अभिराम,
तिमिर से करने को सग्राम,
आ गई गिरती पडती शाम,
माँगने लगी विदा जब रश्मि, उदित शशि के हो खडे समीप !
जल उठे मेरे पच-प्रदीप !

लहर प्रतिकण मे भर अमरत्व,
सिन्धु से लेने चली ममत्व,
उदधि ने अपना देख प्रभुत्व,
ले लिया जीवन का भी स्वत्व,
वही बन उठा गगन मे स्वाति, छिपा जब बैठी उसको सीप !
जल उठे मेरे पच-प्रदीप !

किया जब अवनी ने शृङ्गार,
व्योम छू तारावलि सुकुमार,
माँगने लगा 'प्रकृति' से प्यार
पुरुष से पूजा का उपहार
मनीषी के जब हिलते हाथ बढे लेकर के सातो द्वीप !
जल उठे मेरे पच-प्रदीप !

[आल इडिया रेडियो के सौजन्य से]

२

साथी आगे खडा सवेरा !

सूखे ओठो मे कलरव ले,
कलरव मे निशि का वैभव ले,
पुलकित प्राणो का शैशव ले,
लेकर मधुऋतु की डाली पर मत्रमुग्ध कोकिल का डेरा !
साथी आगे खडा सवेरा !

भ्रमरो को उन्मुक्ति मिली है,
नीहारो को मुक्ति मिली है,
जीवन को अनुरक्ति मिली है,
थके हुये प्राणो को फिर से नूतन आशाओ ने घेरा !
साथी आगे खडा सवेरा !

अब दिन का अवसान न होगा,
सध्या का निर्माण न होगा,
तम का दीपक-दान न होगा,
मेरे भाव-विहग सभवत मॉगेगे अब नही बसेरा !
साथी आगे खडा सवेरा !

३

मेरा स्वप्न है सुकुमार !

भावनाओ सा मृदुल जो,
याचनाओ सा सजल जो,
मान ले कैसे भला दृढ सत्य को आधार !
मेरा स्वप्न है सुकुमार !

शाति का निर्देश वह है,
क्राति का सदेश वह है,
अग्नि को जल, और जीवन के लिए अंगार !
मेरा स्वप्न है सुकुमार !

है स्वय जो सिद्ध पूरा,
किंतु जो फिर भी अधूरा,
सह न पाया कल्पना का भी कभी जो भार !
मेरा स्वप्न है सुकुमार !

४

जीवन पर अधिकार है !

शैशव पर पाकर विजय,
कुसुमो से इतिहास लिख,
अधरो के उन्माद से,
चल-नयनो की प्यास लिख,
दुर्बल मानव को मिला यौवन पर अधिकार है !
जीवन पर अधिकार है

क्रमश जीवन-मच पर
सुख-दुख अभिनेता बने,
दृश्य यवनिका के रहे,
कुछ हँसते, कुछ अनमने,
मृदु भावों को रुदन पर, गायन पर अधिकार है !
जीवन पर अधिकार है !

प्रात उतर आता कि जब
निशि के मौन निकेत से,
मधुऋतु आ जाती यहाँ
पतझर के सकेत से
तब, प्यासी मरुभूमि को सावन पर अधिकार है !
जीवन पर अधिकार है !

६

यह किस लिए, यह किस तरह !

मन को मिटाकर भूल मे,
तन को मिटाकर धूल मे,
निर्माण मेरा नाश से चुपचाप कर लेता सुलह !
यह किस लिए, यह किस तरह !

बैठी किनारे जब रही,
यह बात दुनिया ने कही,
क्या देखना ही चाहती है सिधु की सीमा सतह !
यह किस लिए, यह किस तरह !

झुकता तनिक सा व्योम भी,
ऊपर कभी उठती मही,
फिर चूम लेते है परस्पर युग युगो तक दूर रह !
यह किस लिए, यह किस तरह !

[आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से]

६

जब पुलकित प्रति अणु-अणु था उर-सरि की लहर लहर का,
तव उषा सुहागिन ने आ श्रृङ्गार किया अम्बर का !

पहले निशीथ ने पहनी
तारावलि की मणिमाला,
था हँसा देखकर जिसको
संध्या का शशि रखवाला,
अव उदित बाल-रवि निकला
हँस-हँस नीहार लुटाने,
तम गया पार प्राची के
रूठी रजनी को लाने,

जव प्रकृति पुरुष का सुखमय संधान सधा भांवर का,
तव उषा सुहागिन ने आ श्रृङ्गार किया अवर का !

शतदल ने आज न अब तक
अलियो के बधन खोले,
आश्चर्य कि बदी-अलि भी,
चुप रहे, नही कुछ बोले,
मलयज ने वातायन पर
ली एक मस्त अगडाई,
किसलय ने खोल पखुड़िया,
जी भर सौरभ बिखराई,
आह्वान किया जब जग ने मानव के पुलकित स्वर का,
तब उषा सुहागिन ने आ श्रृङ्गार किया अंबर का !

है चित्र खीचता नभ मे
वह बैठा चतुर चितेरा,
कलियो मे हँस पडता है
बन कर प्रकाश का घेरा,
दोनो हाथो मे लेकर
कोई लाली बिखराता,
सम्मुख दिन सहसा जगकर
है, देखो, दौडा आता,
जब किसी छली ने खीचा चिर-नूतन चीर तिमिर का,
तब उषा सुहागिन ने आ श्रृङ्गार किया अबर का !

आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से]

७

मेरी दुनिया वदल रही तो मौसम क्यो न वदल जाते है !

मधुऋतु आता तो आता पर
पतझड भी क्यो आ जाता है
सत्य, शिव, सुन्दर से पूरित
वे दिन याद दिला जाता है,

विगत स्वर्ण-घटनाओ के चलचित्र सामने आ जाते है।
मेरी दुनिया बदल रही तो मौसम क्यो न वदल जाते है !

वह उपवन जिसके आगे मृदु
मधुऋतु भी शरमा जाता था,
वैभव देख गगन पत्तो पर
गीले सुमन बिछा जाता था,

मुरझाई द्रुम-लतिकाओ के ढेर नजर अब भी आते है।
मेरी दुनिया बदल रही तो मौसम क्यो न वदल जाते है।

नही प्रकृति के सबल नियम
है तेरी दुर्बलता से सीमित,
मानव से है परे नियति की गति
इति-अथ से सीमित ससृति,

जिस पर था अभिमान वही तो ज्ञान मुझे यह समझाते है।
मरी दुनिया वदल रही तो मौसम क्यो न वदल जाते है।

८

मन क्यो निराश वना रहा ?

हिम राशि ने उठकर कहा,
जव सिंधु अधरो पर वहा,
तव, वावले, तू व्यर्थ क्यो असफल प्रयास वना रहा !
मन क्यो निराश वना रहा ?

रवि रश्मियो के दान से,
शशि-दीप के निर्माण से,
तुझको मनाता किंतु तू तम का विकास वना रहा !
मन क्यो निराश वना रहा ?

जय न दिखा सग्राम को,
गति ने दिखा परिणाम को,
था कर्म चाहा, कल्पना का मौन हास वना रहा !
मन क्यो निराश वना रहा ?

[आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से]

९

अभी नही यह सोचा समझा !

अस्थिर है भविष्य का प्रतिक्षण,
जैसे सावन के भारी घन,
जैसा चचल नारी का मन,
आज गया, पर कल क्या होगा, अभी नही यह सोचा समझा !
अभी नही यह सोचा समझा !

खडी जहा उस पथ पर रुकना,
मुझे विदित है दुर्लभ कितना,
पलकों पर आसू का जितना,
किधर, किस तरफ चलना होगा—अभी नही यह सोचा समझा !
अभी नही यह सोचा समझा !

कलि को उपवन प्यार कर रहा,
रगो से श्रृगार कर रहा,
सजल सुनहले भाव भर रहा,
माली के हाथो क्या होगा, अभी नही यह सोचा समझा !
अभी नही यह सोचा समझा !

१०

मेरे मन की थाह न मापो !

भले-बुरे, ऊंचे-नीचे का
जिसने जग से ज्ञान न चाहा,
सब कुछ चरणो मे अर्पित
करके जिसने वरदान न चाहा,
गति जिसकी पाथेय बन चुकी उस जीवन की थाह न मापो !
मेरे मन की थाह न मापो !

शैशव ने भी जिसको पकडा
वृद्धापन ने जिसको बाधा,
मेरी काया ने भी जिसका
भार नही ज्यादा दिन साधा
जो भूला सस्मरण बन गया उस यौवन की थाह न मापो !
मेरे मन की थाह न मापो !

सूरज चमका खिला चाँद
पावस ने घन-माला पहनाई,
ऊषा ने हँस जिसे जगाया,
जिसे सुलाने सध्या आई,
सब कुछ पा भी रिक्त रहा जो, नील-गगन की थाह न मापो !
मेरे मन की थाह न मापो !

११

क्यो आशा की किरण दे रही मुझको आज निराशा !
मौन हो गई अब तो मेरे मन की मुखरित भाषा !

उजड़ चुका मन के मन्दिर से
जब भावो का मेला,
किसकी बाट देखता अब भी
मेरा प्राण अकेला,
अंधकार लिख रहा ज्योति से जीवन की परिभाषा !
क्यो आशा की किरण दे रही मुझको आज निराशा !
मौन हो गई अब तो मेरे मन की मुखरित भाषा !

लक्ष्य-प्राप्ति अब ध्येय नही,
अब चलना केवल क्रम है,
शपथ आज चुप रह चलने की,
गति मेरा सयम है,
अपलक शून्य प्रतीक्षा केवल है मेरी जिज्ञासा !
क्यो आशा की किरण दे रही मुझको आज निराशा !
मौन हो गई अब तो मेरे मन की मुखरित भाषा !

निज सुख-दुख अकित करनेका
व्रत न आज ले तूली
चलती रह बस सदा निरतर
तू कुछ भूली, भूली,
जब अथाह सा कूप बन गया है मेरा मन प्यासा !
क्यो आशा की किरण दे रही मुझको आज निराशा !
मौन हो गई अब तो मेरे मन की मुखरित भाषा !

१२

यह ज्ञात था मुझको नही वरदान इतने पास है !

रवि को उतरते देखकर
कुछ थी गई मै भी सिहर,
पर ज्ञात था मुझको न निशि-निर्माण इतने पास है !
यह ज्ञात था मुझको नही वरदान इतने पास है !

जिसको मनाने के लिये,
जिसको रिझाने के लिये,
व्याकुल रही युग युग वही भगवान इतने पास है !
यह ज्ञात था मुझको नही वरदान इतने पास है !

उन्मुक्ति को निज बल बना,
दृढ भक्ति को सबल बना,
ससृति खडी ले लोक का कल्याण इतने पास है !
यह ज्ञात था मुझको नही वरदान इतने पास है !

[आल इंडिया रेडियो के सौजन्य से]

१३

प्रश्न नही यह तो साधारण !

रोग मुझे क्यों चुप रहने का,
हँस कर सब सुख दुख सहने का,
क्यों न जगत से बदला लेकर 'हलका करती मैं भारी मन !
प्रश्न नही यह तो साधारण !

कितने शीतल हैं अगारे,
कितने गहरे सिधु कगारे,
पतझड़ की भूमिका बना है क्यो मेरे पलको का सावन !
प्रश्न नही यह तो साधारण !

गिरे नीड, नीडो की डाली,
आई वैकाली अँधियाली,
पूछ रहे हो फिर भी मेरे, तुम उडते रहने का कारण !
प्रश्न नही यह तो साधारण !

१४

विश्वास व्यर्थ चला गया !

है शोक खोने का नही,
है नाश होने का नही,
बस खेद युग युग का अमर अभ्यास व्यर्थ चला गया !
विश्वास व्यर्थ चला गया !

जिसमे निशा, शशि थे मिले,
सध्या हुई, तारे खिले,
मै झाक भी पाई न, वह आकाश व्यर्थ चला गया !
विश्वास व्यर्थ चला गया !

तुमने न पहिचाना जिसे,
सच भी नही माना जिसे,
आसक्ति जब समझा गया सन्यास व्यर्थ चला गया !
विश्वास व्यर्थ चला गया !

१९

स्वप्न की पलक सजग हो सो चुकी है।

आरती दिन भर उतारी,
मौन वह रवि सा पुजारी,
हो गया है मान हारी,
तारिकावलिया उसी के पुण्य-पग को धो चुकी है।
स्वप्न की पलके सजग हो सो चुकी है।

शात मधुऋतु और उपवन,
शात हिमगिरि, शात कानन,
शात जड है, शात चेतन,
भाव की डाली व्यथा के मृदु विहग को खो चुकी है।
स्वप्न की पलके सजग हो सो चुकी है।

साध्यनिशि को वाह मे भर,
ज्योति निज को छाँह मे भर,
कह रही कुछ आह भर भर,
सुन जिसे प्राचीधरा का अतराल भिगो चुकी है।
स्वप्न की पलके सजग हो सो चुकी है।

१६

रात ने नही किया अवसाद !

चला जब नभ से शशि सुकुमार,
किरण पर ले प्राची का भार,
भार मे ऊषा का उपहार,
तभी दिन बन कर आई मुग्ध निशा केवल कुछ क्षण के बाद !
रात ने नही किया अवसाद !

ज्ञान का लेकर मौन प्रकाश,
चला नर रचने नव इतिहास,
कुचल कर भूमि, चूम आकाश,
बन चुके थे तब तक अज्ञान, मूर्ख मानव के वाद-विवाद !
रात ने नही किया अवसाद !

नियति फल खाने मे असमर्थ,
मृत्यु उपवन मे काल-विहग;
कर चुका पहले ही आमोद,
बहुत दिन वह ससृति के सग,
चख चुका जीवन-मधु फल और मिल चुका है अमृत का स्वाद !
रात ने नही किया अवसाद !

१७

स्वागत नीड़ नही करते है!

निशि मे ज्योतित रजनीकर का,
प्राची पर चढ़ते अबर का,
आधे जगे हुये घर घर का,
क्योंकि अभी उनके भावों के मूक विहग श्वासे भरते है
स्वागत नीड़ नही करते है

सुप्त पख पतवार नही है,
चल-नभ के आधार नही है,
मुक्त पवन की हार नही है,
कही न तिमिर पकड ले उनको, इस आशका से डरते हैं
स्वागत नीड़ नही करते है

द्वार अचानक खुल जाने पर,
विहगो के वाहर आने पर,
शवनम वन डाली के पत्ते पत्ते से आसू झरते है
स्वागत नीड नही करते है

१८

भूल न पाती भूल पुरानी, नई भूल हो जाती!

भूल न पाती मै अतीत को
वर्तमान आ जाता,
कुछ ही आगे खड़ा भविष्यत
कर सकेत बुलाता,
किसे किसे सौपू मै अपने कर्मो की लघु थाती!
भूल न पाती भूल पुरानी, नई भूल हो जाती!

एक भूल होते ही मेरा
ज्ञान शून्य हो जाता,
फिर मेरा दुर्बल मन अपना
पथ न समझ है पाता,
ज्योतित नही लक्ष्य कर पाती फिर प्राणो की बाती!
भूल न पाती भूल पुरानी, नई भूल हो जाती!

एक भूल तक की भी मैने
क्षमा नही है मागी,
क्यो इनसे कर मोह रहा है
मेरा मन अनुरागी;
यह भूलें जीवन भर मुझको पथ मे रही भुलाती!
भूल न पाती भूल पुरानी, नई भूल हो जाती!

१९

सब सह चुकी, सव सह चुकी !

घन पास आ मेरे घिरे
बरसे बहुत कुछ मुड फिरे,
नभ-पट मिले अथवा नही, मै छोड भूमि सतह चुकी !
सब सह चुकी, सव सह चुकी !

क्या मिल सकेगा सिधु-तट,
है दूर जो दिखता निकट
लहरे नयन मे भर, तरल तूफान मे मै वह चुकी !
सव सह चुकी, सव सह चुकी !

पहले किरण के पख पर,
मेरी कुटी पाए निखर,
किसने छुई ? किसने छुई ? वह ढह चुकी ! वह ढह चुकी !
सव सह चुकी, सव सह चुकी !

२०

दूर भेज मत पास बुलाओ !

दूर भेज कर शशि को तारे,
बुला रहे फिर हाथ पसारे,
अस्ताचलगामी रवि कहता मै तो जाता हूँ, तुम आओ !
दूर भेज मत पास बुलाओ !

मधु ऋतु लौट चला आहे भर
दिल पर भारी सा पत्थर धर,
तब पतझड मधुवन से कहता गीत सुनाकर इसे मनाओ !
दूर भेज मत पास बुलाओ !

यहाँ लौट आने मे विस्मय,
दूर कही जाने मे भी भय,
ओ निष्ठुर ! मेरे दृढ पग को नही हटाओ, नही बढाओ !
दूर भेज मत पास बुलाओ !

२१

हो गई रात, हृदय हो मौन !

कहाँ तक तुम आँखो की राह,
बहाओगे यह सिन्धु अथाह,
विश्व से निर्मोही, हाँ किन्तु किसी के लिए सदय हो मौन !
हो गई रात, हृदय हो मौन !

नित्य रोदन, गायन, अन्याय,
सहोगे तुम कैसे असहाय,
न कर से छूट सके पतवार हार हो मौन, विजय हो मौन !
हो गई रात, हृदय हो मौन !

देख ली है कितनी ही रात,
किन्तु पाया है सदा प्रभात,
कौन कहता कर मृदु संकेत, अजय हो मौन, अभय हो मौन !
हो गई रात, हृदय हो मौन !

२२

तुम मुझसे इतने दूर रहो, चाहू, न तुम्ह पर छू पाऊ !

मै भोली-प्यासी कलियो मे
जा जा कर पुण्य-पराग भरूँ,
ऊषा के अरुणिम मस्तक पर
किरणो का सुभग-सुहाग भरूँ,

तुम हिम के अचल से उठकर, बन मलय-पवन, चुपचाप बहो !
चाहूँ, न तुम्हे पर छ पाऊ, तुम मुझसे इतने दूर रहो !

ससृति के सपनो सा शाश्वत
कुमदी से शशि का नाता है,
पर तारावलियो का सहचर
भ पर न उतर कर आता है,

नभवासी तुमको छूने को युग-युग तक मै कर फैलाऊं !
तुम मुझसे इतने दूर रहो, चाहूँ, न तुम्हे पर छू पाऊ !

यदि तुमको छू लूगी तो कुछ
पावनता ही घट जायेगी,
तब मेरी पूजा ही मुझको
आनन्द नही दे पायेगी,

केवल अभिलाषा एक यही, तुमको दूरी का भास न हो !
चाहूँ, न तुम्हें पर छू पाऊ, तुम मुझसे इतने दूर रहो !

२३

साथी यह मौसम बरसाती !

घिर आये फिर आहों के घन,
फैला निशि-बाहों के बंधन,
भीगे दृग-पंछी ले आते विकल विवश पतझड़ की पाती !
साथी यह मौसम बरसाती !

उर-नभ ऊपर, नीचे मानस,
किसकी बदनामी, किसका यश,
खोजा करती प्रतिदिन बिजली लेकर के सतरंगी बाती !
साथी यह मौसम बरसाती !

शूलों सी बूंदें गिरती हैं,
भूली सी बदली फिरती है,
किंतु करुण रस की कविता सी, वह मरुथल में बरस न पाती !
साथी यह मौसम बरसाती !

२४

आधार हिला ! आधार हिला !

जिसका मुझको था अब तक बल,
ध्रुव सा समझी थी जिसे अचल,
मेरे मन की दुर्बलता का वह दृढतर कारागार हिला !
आधार हिला ! आधार हिला !

अब तक जिन पद-चिह्नो पर चल,
झेली असफलता, पाया फल,
मेरे मन की उस क्षमता का आधार हिला, आधार हिला !
आधार हिला ! आधार हिला !

जिसमें है दोनो सुधा-गरल,
जो निश्चल रह कर भी चचल,
लघु-श्वासो से सीमित उर की ममताका पारावार हिला !
आधार हिला ! आधार हिला !

२५

पूर्ण होगी वह कैसे हानि !

एक ही जिसका हो पाथेय,
एक ही जिसके पथ का ध्येय
उसे ही यदि निर्बल पा, दूर करे दृढ हाथों से संसार
पूर्ण होगी वह कैसे हानि

बैठ सागर के तट के पास,
बुझा यदि सके न कोई प्यास,
चूमकर धार, धार की लहर, लहर की बूद, बूद का क्षार
पूर्ण होगी वह कैसे हानि

प्राण शतदल मे है मकरद,
इसी से श्वासो का अलि वद,
कही लुट जाए सौरभ, शेष रहेगा केवल कारागार !
पूर्ण होगी वह कैसे हानि !

२६

परिणाम मुझको ज्ञात था।

अनुमान यह सब था मुझे,
सहना पडेगा क्या मुझे,
निज लक्ष्य मुझको ज्ञात था, निज काम मुझको ज्ञात था।
परिणाम मुझको ज्ञात था!

पाथेय सागर का लिया,
जो बन सका फिर वह किया,
मेरे लिये तो मृत्यु मे विश्राम, मुझको ज्ञात था।
परिणाम मुझको ज्ञात था!

प्रति भूल शत शत शूल बन,
प्रति शूल शत प्रतिकूल वन,
सम्मुख खडे, होगा प्रबल सग्राम मुझको ज्ञात था।
परिणाम मुझको ज्ञात था।

२९

यह तुम मेरे गीत बताते !

अपने भावों के पनघट पर,
लहरा कर आसू का सागर,
भीगी पलको का सपुट भर,
अधरो पर आता मर्मर स्वर,
तब तुम मेरी विह्वलता के प्रतिक्षण को शत छद बनाते !
यह तुम मेरे गीत बताते !

मेरे आसू का खारापन,
छू कर हो जायेगा पावन,
अत बनाकर निज को साधन,
मैने रुदन किया तुम उसमे, आ आकर रस-राशि मिलाते !
यह तुम मेरे गीत बताते !

भेद आज मै जान चुकी हूँ,
अब तो मै पहचान चुकी हूँ,
मेरी वाणी मे अक्षर बनकर तुम ही हो आते-जाते !
यह तुम मेरे गीत बताते !

३०

भावो का आदेश मानकर लिखती जा तू गीत !

और गीत जिनमे अकित हो
जीवन के उद्‌गार,
वे उद्‌गार मक्त मन को जो
कर दे कारागार,
कारागार जहाँ फूलो के
बधन से शृगार
वह शृगार कि जो युग युग से
कवियो का आधार,

वह आधार कि जिस पर आश्रित किसी हार की जीत !
भावो का आदेश मानकर लिखती जा तू गीत !

पर जिस काया की सुषमा पर
हुआ नही विश्वास,
वह विश्वास कि जो देता है
एक प्रबलतम प्यास,
प्यास—मिलन की आशा को जो
कर देती सन्यास,
वह सन्यास कि जो इस जग मे
एक विरोधाभास,
हंसी उड़ाता मधु, मधु पायी कोयल का सगीत!
भावो का आदेश मानकर लिखती जा तू गीत!

जिसकी उगली ने है मेरा
किया पथ निर्माण,
वह निर्माण कि चाह रहा जो
अग-जग का कल्याण,
वह कल्याण छिपा है जिसमे
मौन विगम बलिदान,
वह बलिदान जिसे समझा है
सबने ही अवसान,
पर जिस पर अवलबित मेरे सपने आशातीत!
भावो का आदेश मानकर लिखती जा तू गीत!

३१

सूने मे मै सोचा करती !

सोचा करती दिन ढलता है,
रवि अस्ताचल पर चढता है,
ही, जहाँ पर से नित सध्या वातायन के मध्य उतरती !
सूने मे मै सोचा करती !

चेतन गतिमय श्वासे भरता,
पर जड सदा कर्म से डरता,
परिवर्तन प्रवृत्ति नश्वरता फिर भी क्यो दोनो मे भरती !
सूने मे मै सोचा करती !

मुझे नही कुछ इसका दुख है,
क्यो तम मय इस पथ का रुख है,
केवल दुख, इस सूनेपन से क्यो मै इतना ज्यादा डरती !
सूने मे मै सोचा करती !

[आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से]

३२

इस हृदय की वेदना जग जान भी पाता भला क्यो !

दिव्य गधा मान निज को
जो कली थी मुस्कराई,
देख शैशव तितलियां भी
थी अनेको पास आई
इष्ट ही जिसको न हो
जग मे किसी को भी रिझाना,

जोडती वह तितलियो से व्यर्थ ही नाता भला क्यो !
इस हृदय की वेदना जग जान भी पाता भला क्यो !

एक दिन नभ मे उडे थे
पख कुछ पैगाम लेकर
मौन प्राची के दृगो पर
मुस्कराती शाम लेकर
किंतु जाने क्या हुआ
भयभीत वापस लौट आए,
क्या किसी ने पथ पर
दृग के कुसुम पाटल बिछाए ?

पुण्य पथी फिर उन्हे आखिर कुचल जाता भला क्यो
इस हृदय की वेदना जग जान भी पाता भला क्यो

एक मन कहता कि अपने
आप क्यो निज को मिटाया,
दूसरा कहता कि पूजा थाल
प्रतिमा पर चढाया,
लाभ क्या होता सुमन
यदि व्यर्थ ही मे सूख जाते,
दूसरे कर यदि उसे
जाकर न मदिर मे चढाते,
विकल मन निज शक्ति जगको व्यर्थ बतलाता भला क्यो !
इस हृदय की वेदना जग जान भी पाता भला क्यो !

कुछ दिनो से है न जाने क्यो
हुआ निष्काम सा मन,
रोज निशि लेकर उतरती
एक पतझड, एक सावन,
डगमगाते पैर के नीचे
खिसकती भूमि जाती,
टूटती प्रतिश्वास जाने किस
तरह मन को मनाती,
दे रहा जीवन दुखद दुर्दैव निर्माता भला क्यो !
इस हृदय की वेदना जग जान भी पाता भला क्यो !

[आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से]

३२

सभी ओर अब नया राग ह ।

सभी ओर नूतन वीणा है,
सभी ओर नूतन वाणी है,
भूमि तुष्टि का साधन है,
नभ मुक्त हृदय है वरदानी है,
जग-जीवन के तममय-पथ पर, ले अतीत आया चिराग है ।
सभी ओर अव नया राग है ।

है मानव को नई प्रेरणा,
दुर्बल मन मे नयी शक्ति है,
ससृति के विधान का साधन,
आज लोक है, आज व्यक्ति है,
सत्य शिव सुन्दर का फैला अग जग मे पावन पराग है ।
सभी ओर अव नया राग है ।

है ज्वाला वुझ चुकी, अभी भी,
है कुछ ज्वालामुखी दहकते,
किसी तरह पाशविक शक्ति से,
नही वुझाये जो जा सकते,
उसको ही शीतल करने को सागर ही वन रहा आग है ।
सभी ओर अव नया राग है ।

३४

बुरा नही जो हो जाता है!

बुरा नही है दुख कह देना,
बुरा नही है दुख सह लेना,
बुरा नही जो निज छदो में, कवि अपने सुख दुख गाता है!
बुरा नही जो हो जाता है!

बुरा नही क्षण भर का बन्धन,
बुरा नही है नश्वर जीवन,
आखिर मानव का जगती से अमर नही कोई नाता है!
बुरा नही जो हो जाता है!

वर्ष हर्ष ले भी जाते है,
वर्ष हर्ष दे भी जाते है,
लेता है देने को कोई यह कह मुझको समझाता है!
बुरा नही जो हो जाता है!

३६

गीत नही दुख कम कर पाते ।

बीती बातो को सचित कर,
हिलते अधरो का सपुट भर,
शब्द लिखे, जो दुर्बल मन की सुप्तप्राय वेदना जगाते ।
गीत नही दुख कम कर पाते ।

लिखे भला क्या क्या किस किस पर,
उन पर जो दृग मे आँसू भर,
मुझको मान चुके है पत्थर,
या जिनकी विस्मृति के सागर,
मे सोया जीवन का निर्झर,
क्या सोचे कब तक रुक रुक कर
लिखे भला क्या क्या किस किस पर
रूढ़ि-ग्रस्त जड़ हुए विश्व मे अपनो के अपनो से नाते ।
गीत नही दुख कम कर पाते ।

इन हाथो को एक व्यसन है,
इनका, लिखना ही जीवन है,
सोचे विना कि क्या लिखते हैं यह दिन प्रतिदिन लिखते जाते ।
गीत नही दुख कम कर पाते ।

३६

तव प्यार मिला तो व्यर्थ हुआ !

जब मेरा भूला-भटका मन
मधु-ऋतु से बन करके सावन,
वह पड़ा, तुम्हारी ममता का मेरे हित तब क्या अर्थ हुआ !
तब प्यार मिला तो व्यर्थ हुआ !

जब सुख पाने का चाव नही,
दुख के प्रति भय का भाव नही,
सुख-दुख दोनो सह लेने मे जब मेरा हृदय समर्थ हुआ !
तब प्यार मिला तो व्यर्थ हुआ !

जब तम मे हो जाने को लय
इस जीवन का असफल अभिनय,
प्रस्तुत, तब मुझको नायक का शृङ्गार मिला तो व्यर्थ हुआ !
तब प्यार मिला तो व्यर्थ हुआ !

[आल इंडिया रेडियो के सौजन्य से]

३७

मुक्ति आज बधन मे मुझको, मुक्ति आज वधन मे ।

मेरे नारी-सुलभ हृदय को नही किसी ने बाधा,
मैने थक कर व्यापकता से, सीमा का व्रत साधा,
अन्तर्यामी निहित हो गया मेरे छोटे मन मे ।
मुक्ति आज बधन मे मुझको, मुक्ति आज बधन मे ।

बधन मे ही स्वतन्त्रता की विजयश्री मिलती है,
श्वासो के पिजडे मे कोमल काव्य-कली खिलती है,
मुझको तो अब शान्ति मिल गई अपने ही रोदन मे ।
मुक्ति आज वधन मे मुझको, मुक्ति आज वधन मे ।

मैने तो जानी न कभी भी निराकार की माया,
मै तो समझी यही कि तुम हो प्राण और मै काया,
स्वय पूज्य वन गई पूज्य के पुण्य चरण पूजन मे ।
मुक्ति आज वधन मे मुझको मुक्ति आज वधन मे ।

३८

आज इसमे ही मुझे सुख।

विश्व से सबंध तोडा,
पर न मैंने लक्ष्य छोडा,
मृत्यु भी मेरे चरण का फेर पाई है नही रुख।
आज इसमे ही मुझे सुख।

दूर अव, कल पास थे जो,
मौन अव, विश्वास थे जो,
इस व्यथित भोले हृदय के
नीड थे, आकाश थे जो,
पर न जिनपर था मुझे अधिकार उनका कौन सा दुख।
आज इसमे ही मुझे सुख।

रक्त दृग जल की लडाई,
तू न अव तक जान पाई,
चीख मुझसे पूछते है हो खडे गत वर्ष सम्मुख।
आज इसमे ही मुझे सुख।

३६

पतझार का यह प्यार है !

काली निशा क भाग्य को,
मधु-प्रात के दुर्भाग्य को,
बस जान पाये प्राप्त यह सब को नही अधिकार है !
पतझार का यह प्यार है !

जब नीड हो, कोकिल न हो,
जव मार्ग हो मजिल न हो,
तब राग बन जाता हृदय का मौनतम उद्गार है !
पतझार का यह प्यार है !

मिलते जिन्हे जाना यहाँ,
रोते जिन्हे गाना यहाँ,
वह मृत्यु ले बढते जिन्हे नर दे रहा ससार है !
पतझार का यह प्यार है !

४०

जीवन मुझसे पूछ रहा है ।

लो अब मरुथल में मृग आता
दृग-घन से सावन बरसाता,
'उसको क्या देना' वालू का कण-कण मुझसे पूछ रहा है ।
कण-कण मुझसे पूछ रहा है !

सो, धरती क नीचे गहरे
कब तक शात रहे ये लहरे,
'मुझ से क्या कहना'—यह मेरा जीवन मुझ से पूछ रहा है ।
जीवन मुझसे पूछ रहा है ।

विस्तृत मन मे सूनापन भर
पडा सामने सूखा सागर,
'उसको क्या देना'—वालू का कण-कण मुझसे पूछ रहा है ।
कण-कण मुझसे पूछ रहा है ।

४१

मुझको कुछ का कुछ कर डाला !

कुछ वेद-मन्त्र के घेरो ने,
भावर के सातो फेरो ने,
नव-अभिनय की अभिलाषा ने, अभिलाषा के पागलपन ने !
मुझको कुछ का कुछ कर डाला !

मधुऋतु के मंजुल सपनो ने,
इन नये नये से अपनो ने,
इनकी उत्सुक जिज्ञासा ने जिज्ञासा के पागलपन ने !
मुझको कुछ का कुछ कर डाला !

कितनी कोमल, कितनी सुन्दर,
कितनी अच्छी, कितनी रुचिकर,
जीवन की इस परिभाषा ने, परिभाषा के पागलपन ने !
मुझको कुछ का कुछ कर डाला !

४२

हो गया मेरा हृदय उदास !

किसी के कुछ कहने के पूर्व,
मिला मुझको सदेश अपूर्व,
बहाए बिना नयन का नीर किसी ने शीतल कर दी प्यास !
हो गया मेरा हृदय उदास !

शून्य की सरिता के उस पार,
नियति साकार, भाग्य साकार,
दीन धरती की बाहे चूम रो पडा मुक्त-हृदय आकाश !
हो गया मेरा हृदय उदास !

निठुरता मेरी किसे प्रसाद,
समझ पाई इतने दिन बाद,
किसी के उर मे मधुरिम मोह बन गया जब मेरा सन्यास !
हो गया मेरा हृदय उदास !

४३

आत्म समर्पण नही सरल है !

किसने निज अस्तित्व भुलाया,
किसने निज व्यक्तित्व भुलाया,
सीमित हुआ एक शतदल पर किसका हृदय-भ्रमर चचल है !
आत्म समर्पण नही सरल है !

किस पर है शूलो की लडियां,
किस पर फूलो की फुलझडिया,
क्या जानेगा गिन न सका जो
अपने हाथो की हथकडिया,
एक कली तक ही सीमित कब मजुल भाव भरा परिमल है !
आत्म समर्पण नही सरल है !

प्रतिफल यहाँ नही मिलता है
सवल यहाँ नही मिलता है,
पर पीना जव, व्यर्थ पूछना यह अमृत है, या कि गरल है !
आत्म समर्पण नही सरल है !

४४

मेरे मौन हृदय की पीडा जान नही जग पाया।

कितने अभिशापो को मैने
मधुमय दान दिये है
कितने ही पापो को मैने
पुण्य प्रदान किये है
कितना विप पी वन पाई है यह अमृत की काया।
मेरे मौन हृदय की पीडा जान नही जग पाया।

हाथ रखा माथे पर फिर भी
यह कन्धे तो भारी
सब कुछ दे घर खाली आया
वजारा व्यापारी
चला बनाने था कुछ पर कुछ और स्वय वन आया।
मेरे मौन हृदय की पीडा जान नही जग पाया।

यह बौरो की वास, आम के कुज
पियू की बोली
पर मेरे यौवन का केवल
पतझड ही हमजोली
वह पतझड आये कैसे मन मे मधुऋतु की माया।
मेरे मौन हृदय की पीडा जान नही जग पाया।

४९

मेरा मधुऋतु, मेरा मधुवन!

फल के वृक्ष, वृक्ष की डाली
ऊषा जिनपर बन वैकाली
भर भर सुधा सलिल की प्याली
दुर्वल मानव मृग को देती, दृग का निर्झर मन का सावन
मेरा मधुऋतु, मेरा मधुवन!

जिनने भोले वच्चे पाले
पलके चूमी, गात सभाले
बन कर नीडो के रखवाले
पहुँच न पाये कोई इससे रखे वहा शूलो के वन्धन
मेरा मधुऋतु, मेरा मधुवन!

कुसुम लिये है हास तुम्हारा
तितली बन सब ओर निहारा
नभ बन देते तुम्ही सहारा
समझ गये तुम यही कही हो मेरे पत्थर! मेरे पावन
मेरा मधुऋतु! मेरा मधुवन!

४६

किस नीड खोजने को व्याकुल मेरा यह भोला प्राण-विहग !

जिसमे प्रकाश तो रहे सदा
क्षणभर भी किंतु अशान्ति न हो,
जिसमे विद्युत की गति तो हो
पर मानव-मन की क्राति न हो,

कल्पना-कली मुस्काती हो
छूकर डाली के शूल-फूल,
भावना लता लहराती हो
ले निज आदर्शों का दुकूल,

अनुरक्ति वन गई हो पवित्र
अपना अक्षय सयम लेकर,
आसक्ति सफल बन जाती हो
श्रद्धा का एक नियम लेकर,

"जाने क्या" वनने की धुन मे
जाने क्या-क्या वन जाता हो,
भावुक वन निर्मम वनता हो
पाषाण करुण कहलाता हो,

आहो के तानो-वानो से झुरमुट वनता हो जाल स्वय !
छू उलझ अचानक जाता हो मेरा भोला अनजान विहग !
वह नीड खोजने को व्याकुल मेरा यह भोला प्राण-विहग !

४७

भूल जाने के प्रथम यह जान लेना बात !

याद रहने का जिसे था
प्राप्त वर – वरदान,
वह भुलाया जा सके
यह भूल एक महान,
बन चुके हो जब कि तुम
नर से स्वय भगवान,
किस तरह से हो सकोगे
तुम पुन पाषाण,
शशि तुम्हे मै रोक लूगी बन मिलन की रात !
भूल जाने के प्रथम यह जान लेना बात !

भूल जाना, जान यह
लेना नही आसान
पूर्व ही करना पडेगा
यह हृदय शमशान,
तुम स्वय गति बन रहोगे
है कि जब तक प्राण,
बस यही रह कर रहेगा
यह हठी मेहमान,
चूम रवि को भी सकेगा बन प्रदीप्त प्रभात !
भूल जाने के प्रथम यह जान लेना बात !

यदि उदय निश्चित विदित
निश्चित स्वय अवसान,
पर नही निश्चित अमिय के
साथ है विषपान,

स्नेह है यद्यपि नही
आदान और प्रदान,
किन्तु बादल को नही
मरुभूमि का अनुमान,

जो कि हरियाती कभी पा अश्रु की बरसात !
भूल जाने के प्रथम यह जान लेना बात !

यदि कभी भूले, करूगी
पथ वह निर्माण,
हो अधेरा हर तरफ
हो सामने सुनसान,

ले युगल कर मे युगो का
मौन सचित ज्ञान,
विश्व को देने चलूगी
मुक्ति या कल्याण,

पर असह्य होगा तुम्हारा यह करुण आघात !
भूल जाने के प्रथम यह जान लेना बात !

४८

यह तो सत्य की थी हार !

मौन ही संदेश थे जब,
मौन ही आदेश थे जब
मिल सका था कल्पना का काव्य को आधार !
यह तो सत्य की थी हार !

भार भी मै सह न पाई,
प्यार भी मै सह न पाई,
और दृग जल को मिले कटु व्यंग के अंगार !
यह तो सत्य की थी हार !

धर्म कितने दूर पर थ,
मर्म कितने दूर पर थे,
थी कहाँ पर राह मेरी,
कर्म कितने दूर पर थे,
मचलते थे प्राण करने पार पारावार !
यह तो सत्य की थी हार !

४९

यदि गीत को मिलता कभी आधार !

यदि भावनाए धर्म का घर रूप,
यदि कल्पनाए कर्म का घर रूप,
यदि विश्व के अपवाद बन सिद्धात,
करते सत्य को क्षणभर कभी साकार !
यदि गीत को मिलता कभी आधार !

अधरो को सके हो प्राप्त कभी उडान,
पुतली को मिले यदि सिधु से जलदान,
मेरे युग-युगो के नील-नभ को मौन
यदि मिल सके धूमिल धरा का भार !
यदि गीत को मिलता कभी आधार !

वालू, घाट, जल फिर थाह उसमे सीप,
पर वह स्वाति के ही है सदैव समीप,
होती शाति केवल है उसे ही प्राप्त
पलको पर लुटाता जो चले अगार !
यदि गीत को मिलता कभी आधार !

५०

सुख दुख तुमको आज विदाई ।

जिस दिन जो होना होता है,
उस दिन वह हो कर रहता है,
नियति-चक्र से इस जीवन की वच कोई भी घडी न पाई ।
सुख दुख तुमको आज विदाई ।

उर की धडकन श्वासो से उठ,
अधरो पर आ रुक जाती है,
कवि ने उसको पा लेने को वहुत दिनो ताकत अजमाई ।
सुख दुख तुमको आज विदाई ।

पलको पर अटके उलझे क्षण,
लिख न सके अवतक जीवन भर,
मेरे चरणो की दुर्वलता, मेरी वाहो की अगडाई ।
सुख दुख तुमको आज विदाई ।

८१

मेरी सीमा है नही प्रणय !

है शयन-कक्ष तक सीमित कब
मेरे आदर्शो की उडान,
मेरे पखो मे अतुल शक्ति
मेरे आगे भी आसमान,
नीडो के बधन पर मेरी हो चुकी विजय, हो चुकी विजय !
मेरी सीमा है नही प्रणय !

मैं सोच रही जग मे कैसे
नारी-पद को उत्थान मिले,
युग के पाशविक मनुष्यो को
फिर मानवता का दान मिले,

फिर हो ससृति के कर्णधार, विश्वास, शाति, सतोष, विनय !
मेरी सीमा है नही प्रणय !

यदि प्रणय मुझे देने आया
अपने पन के प्रति अहभाव,
यदि पूर्ण कर रहा वह केवल
नारी की काया का अभाव,
यदि त्याग, सत्य, जन, मन के प्रति
दे रहा मुझे वह है विरक्ति,
यदि द्वेष, क्रोध की क्रीडा की
दे रहा मुझे वह नई शक्ति,

तब क्यो न विश्व की नारी को हो सके मान्य मेरा निर्णय !
मेरी सीमा है नही प्रणय !

८२

अब है व्यर्थ रोदन-हास !

दोनो आज दिखते व्यर्थ,
दोनो हो चुके असमर्थ,
दोनो ही मुझे निज-प्रति कभी पाए न दे विश्वास !
अब है व्यर्थ रोदन-हास !

यह पाएं न दे वरदान,
यह पाए न ले अभिशाप,
करता आज भी है विश्व पहले की तरह उपहास !
अब है व्यर्थ रोदन-हास !

दोनो मोह के है रूप,
है विद्रोह के प्रतिरूप,
रोने और हँसने से मुझे, अच्छा लगा सन्यास !
अब है व्यर्थ रोदन-हास !

५३

तज दिया अमरत्व जिसने है वही तो नर कहाया !

वन वही सकता जलद
हो आग से भी मोह जिसको,
पा वही सकता कि होता
त्याग से भी मोह जिसको,
हृदय वीणा से कभी भी
तोड जो सवन्ध सकता,

रागिनी का प्यार लेकर, है वही तो स्वर कहाया !
तज दिया अमरत्व जिसने है वही तो नर कहाया !

प्राप्ति की आशा तथा
है हानि का भय साथ रहता,
जो न है, अथवा किसी का
मौन परिचय साथ रहता,
साथ हो सकता किसी के
साथ को ही छोडने मे,

दूर जो परदेश से, वह ही पथिक का घर कहाया!
तज दिया अमरत्व जिसने है वही तो नर कहाया!

एक दिन पत्थर स्वय से
पूछने निज कर्म बैठा,
एक दिन पत्थर स्वय से
पूछने निज धर्म बैठा,
और वह बोला स्वय
जो मान दे अपमान सहता,

अग्नि वरसाता स्वय से मिल वही पत्थर कहाया!
तज दिया अमरत्व जिसने है वही तो नर कहाया!

८४

मुझ अब औरो से क्या काम ।

स्वाति ही जिसकी हरता प्यास,
व्यर्थ है उसके हित आकाश,
एक ही बनमाली का श्रेय, किया करता उपवन अभिराम ।
मुझे अव औरो से क्या काम ।

मिल गये जिसको योगीराज,
करेगा क्या ले सैन्य-समाज,
जीत मे नही रहा सदेह चले तो चला करे सग्राम !
मुझे अव औरो से क्या काम ।

तुम्हे लख साहस अपने आप,
चला आता वनकर पदचाप,
अरे पगली मीरा के कृष्ण वहुत है मुझे तुम्हारा नाम ।
मुझे अव औरो से क्या काम ।

५८

शशि तुम भी दो मुझे बधाइ ।

जो तुमसे भी ज्यादा उज्वल,
तम को हरने का ज्यादा बल,
दिखा रही जो पथ जगत को ऐसी निधि है मैंने पाई ।
शशि तुम भी दो मुझे बधाई ।

जीत चुका जो कोमल मन को,
मधु को, मधु पायी मधुवन को,
हरा न पाई कोकिल जिसको, जीत नही पाई अमराई ।
शशि तुम भी दो मुझे बधाई ।

मुझमे, ज्यो कलियो मे सौरभ,
अथवा निशि मे ज्यो नीला नभ,
हिमगिरि से विशाल मानस मे सागर सी अनादि गहराई ।
शशि तुम भी दो मुझे बधाई ।

८६

याद आती है तुम्हारी ही निरतर
क्यो न जाने हार मे भी, जीत मे भी !

रात आती है तुम्हारी याद लेकर,
रात जाती है तुम्हारी याद लेकर,
समय की गति मे तुम्हारी चेतना है,
दिवस के प्रारभ-उपसहार मे भी !
याद आती है तुम्हारी ही निरतर
क्यो न जाने जीत मे भी, हार मे भी !

क्या यही है सत्य तुम केवल मरीची,
व्यर्थ ही दृग से हृदय की भूमि सीची,
अधर के प्रतिबध है कुछ गुनगुनाते,
विश्व मे जो है बिखरते गीत बनकर !
क्यो न जाने हार मे भी, जीत मे भी,
याद आती है तुम्हारी ही निरतर !

जब कि पछी बोलकर रवि को जगाते,
जब कि तारे सिमट शशि के पास आते,
सुन तभी लेती मधुर आवाज परिचित
अलस नभ के मुस्कराते प्यार मे भी !
याद आती है तुम्हारी ही निरतर
क्यो न जाने जीत मे भी, हार मे भी !

८७

जहाँ मै देखती हूँ तुम वही साकार होते हो !

स्वय को देखती हूँ तो तुम्हारा रूप पाती हूँ,
मुझे ही प्राप्त होता अर्घ जब तुमको चढाती हूँ,
न जाने किस तरह रह दूर एकाकार होते हो !
जहा मै देखती हूँ तुम वही साकार होते हो !

गगन को देखती, तुम चन्द्र बन बाहर निकल आते,
दिवाकर देखती तो तुम किरण बन मुसकरा जाते,
नयन के पास फिर भी तुम पहुँच के पार होते हो !
जहाँ मै देखती हूँ तुम वही साकार होते हो !

अजब जादू अचल-चल को, सभी को मुग्ध कर लेते,
जहा पतझार होता है, वहा मधुमास कर देते,
किसी की भेट मे स्वयमेव अगीकार होते हो !
जहा मै देखती हूँ तुम वही साकार होते हो !

५८

कोई देने चला वधाइ।

रजत करो म मुक्ता दल भर,
ज्योतित करता धुधला अबर,
भरकर नव-निशीथ मे अपनी अलसित श्वासो की अँगडाई।
कोई देने चला वधाई।

कुछ थोडा प्रकाश वढ आया,
रही न पीछे फिर भी छाया,
पथ की निर्जनता मे लेकर केवल अपनी ही परछाई।
कोई देने चला वधाई।

खोल तिमिर का लघु घूघट पट,
मधु से भर भावो का सपुट,
उपा, उदित-रवि वनकर, देखो, नव- दपति की जोडी आई।
कोई देने चला वधाई।

५९

विदा के समय कौन सा गीत !

विदा के समय व्यर्थ है मोह,
व्यर्थ विधि की गति से विद्रोह,
व्यर्थ छूकर श्वासो के तार छेडना भावपूर्ण सगीत !
विदा के समय कौन सा गीत !

करूँ किन किन बातो की याद,
कि किन किन सपनो का अवसाद,
आज इतने वर्षो के बाद,
जगाऊ कैसे है सुकुमार अभी तक सोया हुआ अतीत !
विदा के समय कौन सा गीत !

कह रहा कोई मुझको रोक,
शोक मे भी तो है आलोक,
नियति से दुर्बल मन की हार लिये हो शायद कोई जीत !
विदा के समय कौन सा गीत !

६०

जीवन जीवन मे भेद नही !

दृग हो, सरिता हो या सर हो,
सागर, गागर हो, निर्झर हो,
शीतलता दे ही जाते हैं, जीवन जीवन मे भेद नही !
जीवन जीवन मे भेद नही !

कवि हो, किसलय हो या कलि हो,
उपवन हो, मधुऋतु या अलि हो,
परवशता दे ही जाते हैं, वधन वधन मे भेद नही !
वधन वधन मे भेद नही !

किरणे हो, शशि हो, रजनी हो,
कपन, वीणा हो, रमणी हो,
तन्मयता दे ही जाते हैं, गायन गायन मे भेद नही !
गायन गायन मे भेद नही !
जीवन जीवन मे भेद नही !

६१

तुम नही अभी भी निराधार !

पलको पर घिर घिर काले घन
नयनो मे भर देते सावन,
नव दूर खडा कहता जीवन, मुझको गत कठो से पुकार !
तुम नही अभी भी निराधार !

लख करके प्राणो का मरुथल,
भूला-भूला मृग-मन चचल,
नव बोल उठा सहसा सयम, बालू पर कुछ जलकण पसार !
तुम नही अभी भी निराधार !

फल से वचित कर्मो मे रत
मैं शोकाकुल, पीडित, आहत
तव ममता-मय मनु का मानव, आ पास कह रहा बारबार !
तुम नही अभी भी निराधार !

६२

प्रेम मे सतुष्टि भी है प्यास भी है ।

काव्य मे अनुभूति भी है चेतना भी,
चेतना मे वेदना है प्रेरणा भी
सिधु मे घन और मरु का भास भी है ।
प्रेम मे सतुष्टि भी है प्यास भी है ।

छॉह छूने को बढे ही हाथ जाते,
चरण गति को है पकड फिर भी न पाते.
क्योकि दोनो दूर भी है, पास भी है ।
प्रेम मे सतुष्टि भी है, प्यास भी है !

चंद्र की दूरी जगत को शाति लाई,
उषा ने रवि की सुघर गागर सजाई,
दिव्य निशि-ग्रह भूमि भी, आकाश भी है ।
प्रेम मे सतुष्टि भी है, प्यास भी है ।

६३

साथी एक रात की बात !

शशि ने तम पर जादू डाल,
पहना दी तारो की माल,
निशि की श्यामलता को चूम, वहा रश्मि का रौप्य प्रपात !
साथी एक रात की बात !

सुस्मृति ने पाया इतिहास,
पतझड ने पाया मधुमास,
पास खडी थी यद्यपि ग्रीष्म, दूर नही था पर मधुवात !
साथी एक रात की बात !

नील गगन था नीरव मौन
चुपके से आए तुम कौन
पाकर मुग्ध हुआ मकरद मेरे प्राणो का जलजात !
साथी एक रात की बात !

६४

दिवस व्यर्थ बीते जाते है।

आँखे जग जग ज्योति चुकी खो,
बची हुई खोती है रो रो,
पर जीवन पुस्तक के अक्षर पुतली से वल अजमाते है।
दिवस व्यर्थ बीते जाते है।

पथ असीम है पद सीमित है,
शेप न जिनमे कोई गति है,
फिर दिन पर दिन कधे भी तो भारी हो झुकते जाते है।
दिवस व्यर्थ बीते जाते है।

कुछ प्रतिमा पर फूल चढाते,
कुछ देहली पर ही झुक जाते,
कुछ पूजा हित हार बनाते,
इनमे से कोई तो तू है कह करके कुछ समझाते है।
दिवस व्यर्थ बीते जाते है।

६७

जो प्रिय, उसकी भूल मधुर है !

त्याग लिए अनुनय आता है,
राग लिए परिचय आता है,
यह वह पथ है जिसमे प्रति-पग चुभनेवाला शूल मधुर है।
जो प्रिय, उसकी भूल मधुर है।

सम्मुख खडा देख विद्रोही,
हँस बढता है अश्वारोही,
इस असफल युद्धस्थलि को यह दिग्विजयी प्रतिकूल मधुर है।
जो प्रिय, उसकी भूल मधुर है।

अगारे को दीपक माना,
जल कर गिर जाता परवाना,
वलिदानी की मौन चिता पर उडनेवाली धूल मधुर है।
जो प्रिय, उसकी भूल मधुर है।

६६

मोल करोगे क्या जीवन का।

कुछ तो सुख सपनो का भय है,
तो फिर कुछ अपनो का भय है,
पर इनसे भी ज्यादा भय है मुझको अपने भावुक मन का।
मोल करोगे क्या जीवन का।

आशा मिटकर भाव जगाती
कविता मौन अभाव जगाती,
श्वास विभाजन कर देती है, लघु-जीवन का दीर्घ-मरण का।
मोल करोगे क्या जीवन का।

जो वसत का है अनुगामी,
जो भीगे पावस का स्वामी
पतझर तिरस्कार करता है ऐसे भाव-भरे सावन का।
मोल करोगे क्या जीवन का।

६७

कह रही सुप्त नीम की छाँह—

कौन सी आज शान्ति की राह ?
कौन सी आज क्रान्ति की राह ?
किसे पाने की है परवाह !

प्रकृति से मानव होकर दूर,
कर रहा अपने पर अभिमान,
क्रान्ति मानो उसका अधिकार,
शान्ति है भीख, शान्ति है दान !

मुग्ध है फिर भी प्रकृति उदार,
युगल हाथो मे ले उपहार,

जलं रही भूमि, किंतु नभ बीच खड़ा शशि फैला शीतल बाँह !

कह रही सुप्त नीम की छाँह—
कौन सी आज शान्ति की राह ?
कौन सी आज क्रान्ति की राह ?
किसे पाने की है परवाह !

अभी भी उपवन का अनुराग,
दे रहा है सदेश महान,
अभी भी पुण्य प्रकृति के बीच,
छिपे है कितने ही वरदान !
व्यक्ति कल्याण, देश कल्याण,
लोक कल्याण, विश्व कल्याण,

जल रही भूमि किन्तु नभ बीच खडा शशि फैला शीतल बाँह !

कह रही सुप्त नीम की छाँह—
कौन सी आज शान्ति की राह ?
कौन सी आज क्रान्ति की राह ?
किसे पाने की है परवाह !

६८

यदि रवि से तारे कुछ न कहे !

उसमे न सबल का है विकास,
उसमे निर्बल का अट्टहास,
बन जाये भूमि उदधि ही यदि जल से अगारे कुछ न कहे !
यदि रवि से तारे कुछ न कहे !

लहरे खेतो के नही पास,
तट की बालू बोली उदास,
दोनो सीमाए तोड चले यदि मौन किनारे कुछ न कहे !
यदि रवि से तारे कुछ न कहे !

गतदल पलको को बद किए,
बैठे हो निज मकरद पिए,
मधु आसू हो जाये यदि अलि निज हाथ पसारे कुछ न कहे !
यदि रवि से तारे कुछ न कहे !

६९

दिखता नही उस-पार है।

बैठा रहा आशा भरे,
नाविक किसी के आसरे,
अपलक नयन देखा किये, उठ उठ गिरी मँझधार है।
दिखता नही उस-पार है।

उन्मुक्त सागर है अजय,
रुकता भला क्यो मान भय,
उसका विसर्जन ध्येय, जिसके हाथ मे पतवार है।
दिखता नही उस-पार है।

कुछ भी नही अब साथ है,
निश्चल इसी से हाथ है,
अब बन चुका है पथ का पाथेय पारावार है।
दिखता नही उस-पार है।

७०

नीडो का निर्माण व्यर्थ क्यो कर करे ।

मुक्त गगन के हो चुके
बाल्य-विहग अभ्यस्त यदि,
मुग्ध-पवन से खेलने
में ही हो वे व्यस्त यदि,

पखो पर परिधान व्यर्थ क्यो कर करे ।
नीडो का निर्माण व्यर्थ क्यो कर करे ।

जो केवल कुछ स्वार्थवश
ले पूजा का भार ले,
मन की दुर्बल भक्ति को
जो कर अगीकार ले,

नर, नर को भगवान व्यर्थ क्यो कर करे ।
पखो पर परिधान व्यर्थ क्यो कर करे ।

मै सहसा डर कर खडी
अभिशापो के सामने,
पुण्य लूटने के लिए
प्रिय पापो के सामने,

कोई भी सम्मान व्यर्थ क्यो कर करे ।
नर, नर को भगवान व्यर्थ क्यो कर करें ।

७१

वह अम्वर फिर भी निराधार !

आधार भूमि को हिमगिरि का,
आधार भूमि को सागर का,
निशि, शशि, तारो को, गोदी ले कर रहा समुदर सात पार !
वह अंवर फिर भी निराधार !

कधे पर चढ वैठे वादल,
विजली भी अजमाती निज वल,
है लडना जिससे चाह रही झझा लम्वी वाहे पसार !
वह अंवर फिर भी निराधार !

सध्या प्रात मे विखर विखर,
धुधला, मीठा चिडियो का स्वर,
करता रहता जिसमे प्रति दिन हँस हँस, रो रो नौका विहार !
वह अवर फिर भी निराधार !

७२

आज तो मँझधार मे विश्राम !
आज रोदन से मुझे है मोह,
आज गायन से मुझे विद्रोह,
सह रही हूँ जो व्यथा का भार,
आज तो उस भार मे विश्राम
आज तो मँझधार मे विश्राम !

जो चला देने चरण को शान्ति
भर हृदय मे युग युगो की क्रान्ति,
तृप्ति दे करके मिला अगार,
आज तो अगार मे विश्राम !
आज तो मँझधार मे विश्राम !

दे चला जो है नया इतिहास,
ले गया कुछ पूर्व का विश्वास,
हार देने को मिला जो प्यार,
आज तो उस प्यार मे विश्राम।
आज तो मँझधार मे विश्राम।

व्योम के तारे चुके है टूट,
चल दिया शशि भी अचानक छूट,
तिमिर का नव-घट गया है फूट,
देव। तुम भी जा रहे हो रूठ,
दे मुझे मधुमास मे पतझार,
आज तो पतझार मे विश्राम।
आज तो मँझधार मे विश्राम।

सामने सागर पडा स्वच्छन्द,
टूट सब उसके चुके है वध,
प्रति लहर ही है प्रलय का छद,
प्रवल गर्जन पर नही प्रतिवध,
क्षीण हाथो मे निवल पतवार,
आज तो पतवार मे विश्राम।
आज तो मँझधार मे विश्राम।

हमारे सांस्कृतिक प्रकाशन

[हिन्दी ग्रन्थ]

१. मुक्तिदूत-[पौराणिक रोमांस]—श्री० वीरेन्द्रकुमार जैन एम० ए० ५)
२ शेरो-शायरी—श्री० अयोध्याप्रसाद गोयलीय ८)
३ पथचिह्न [स्मृतिरेखाएँ और निबन्ध]—श्री० शान्तिप्रिय द्विवेदी २)
४ दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां—श्री० डॉ० जगदीशचन्द्र एम० ए० ३)
५. वैदिक साहित्य—श्री० रामगोविन्द त्रिवेदी ६)
६ पाश्चात्य तर्कशास्त्र—श्री जगदीश भिक्षु एम० ए० ६)
७ आधुनिक जैन कवि—श्रीमती रमा जैन ३॥)
८ जैन शासन—श्री० सुमेरचन्द्र दिवाकर ३)
९ हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास—श्री० कामताप्रसाद जैन २॥=)
१० कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न—श्री० गोपालदास पटेल २)
११ भारतीय विचारधारा—श्री० मधुकर २)
१२ मिलन यामिनी—कविवर बच्चन ४)
१३. मेरे बापू—हुकमचन्द्र 'बुखारिया' २॥)

[संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ]

१४ महाबन्ध—(महाधवल सिद्धान्त शास्त्र) १२)
१५ न्याय विनिश्चय विवरण—(प्रथम भाग) १५)
१६. तत्त्वार्थवृत्ति—(हिन्दी सार सहित) १६)
१७ कन्नड प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ सूची १३)
१८. मदन पराजय—(हिन्दी सार सहित) ८)
१९ करलक्खण—(सामुद्रिक शास्त्र) १)
२० केवलज्ञान प्रश्न चूडामणि (ज्योतिष ग्रन्थ) ४)
२१ नाममाला— ३॥)
२२ सभाष्य रत्नमंजूषा—(छन्द शास्त्र) २)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुंड रोड बनारस ४

ज्ञानपीठके आगामी प्रकाशन

[जो शीघ्रही प्रकाशित हो रहे हैं]

१. हमारे आराध्य--ये रेखाचित्र श्री बनारसीदास चतुर्वेदीकी सर्वोत्तम कृति है। इसमें उन्होने अपनी आत्मा उँडेल दी है।

२. शेर-ओ-सुखन (प्रथम भाग) उर्दू शायरीका प्रारभसे ई० स० १९०० तक का प्रामाणिक इतिहास। तुलनात्मक विवेचन, निष्पक्ष आलोचना और इस अवधिमे हुए प्राय सभी मशहूर शायरोके श्रेष्ठतम कलामका सकलन तथा उनका परिचय।

३ सिद्धशिला (काव्य) सिद्धार्थके ख्यातिप्राप्त कवि श्री अनूप शर्माकी हिन्दी ससारको अमर देन। भगवान् महावीरका हृदयस्पर्शी जीवन।

४. रेखाचित्र और सस्मरण-हिन्दीके तपस्वी सेवक श्री बनारसीदास चतुर्वेदीकी जीवनव्यापी साधना। उनकी अन्तरात्माकी प्रतिध्वनि।

५. भारतीय ज्योतिष-ज्योतिषके अधिकारी विद्वान् श्री नेमिचंद्र जी जैन ज्योतिषाचार्यकी प्रामाणिक कृति।

६. ज्ञानगगा-ससारके महान् पुरुषोकी श्रेष्ठतम सूक्तिया।

नोट --जो १०) भेजकर स्थायी सदस्य बन जाएगे उन्हे उक्त ग्रथ पौने मूल्य मे प्राप्त होगे।